RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 17 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 19 जुलाई, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 17, 16-19 जुलाई 2020 तदनुसार 4 श्रावण, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

प्रथम संस्कृति

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः।।
–यजु:० ७।१४

शब्दार्थ–हे **सोम** = शान्तिदायक **देव**= परमात्मन्! **ते** = तेरे **अच्छिन्नस्य** = परम्परा से अनवच्छिन्न, अटूट **सुवीर्यस्य** = उत्तम-शक्ति-प्रदात्री के तथा **रायः+पोषस्य** = धनवृद्धि के **ददितारः** = धारण करने वाले और देने वाले **स्याम** = हम हों। **सा** = वह **प्रथमा** = सबसे पहली, मुख्य और **विश्ववारा** = सबसे स्वीकार करने योग्य **संस्कृतिः** = संस्कृति है, **सः** = वह **प्रथमः** = प्रथम **मित्रः** = मित्र, **वरुणः** = वरणीय और **अग्निः** = अग्नि है।

व्याख्या–भगवान् के दान का प्रवाह कभी नहीं टूटता। भगवान् नित्य है, उसका कार्य सृष्टि-सर्जन आदि भी नित्य है, अतः उसका दान भी नित्य है। दान-प्रवाह नित्य होते हुए भी किसी भाग्यवान् को ही यह दान प्राप्त होता है। हमारी कामना है हम सभी इसके **'ददितारः स्याम'** = धारण करने वाले और प्रदान करने वाले हों। हमें मिले और हम फिर आगे दें, इसका सदा विस्तार होता रहे। भगवान् का दान मूलदान, मूलधन है। जैसे एक व्यापारी कुछ धन व्यापार में या सूद पर लगाता है, उससे आने वाला सारा धन मूलधन की वृद्धि है, यदि वह धन-मूलधन न हो तो वृद्धि नहीं हो सकती, इसी प्रकार भगवान् का यह दान भी– **'प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'** = सबसे पहली, मूल अतएव सबकी स्वीकरणीय संस्कृति है। संसार की सारी संस्कृतियाँ वेद की संस्कृति से निकली हैं।

संसार के समस्त सद्व्यवहारों और विचारों का मूल उद्गम वेद है। मनुष्यों के आत्माओं का संस्कार=परिष्कार करने तथा समस्त व्यवहार सिखाने के लिए भगवान् ने सर्ग के आरम्भ में मनुष्यों के लिए चार ऋषियों–अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा–को वेदज्ञान दिया। चूँकि उसने कृपा करके ज्ञानदान दिया, अतः–

स प्रथमो मित्रो वरुणो अग्निः।

वह सबसे पहला, मुख्य, मित्र है और वही वरण=चाहने योग्य है, अग्नि= आगे ले जाने वाला है। मित्र का काम है कि मित्र को हित सुझाये। संसार के रणक्षेत्र में अवतीर्ण होने के साथ ही उसने हमें ज्ञान-कृपाण दे दी, अतः वह मित्र है और इसी कारण वह हमारा अभीष्ट है। सभी जीवों की भगवान् उन्नति करता है, अतः वह अग्नि है। और–

'सः प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्' [यजु:० ७।१५] = वही बृहस्पति सबसे पहला ज्ञानी, सुझाने वाला है। अतः **'तस्मै इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा' [यजु:० ७।१५]** = उस ज्ञानैश्वर्यसम्पन्न, अज्ञानवारक भगवान् के लिए सच्चे मन से सभी ऐश्वर्य दे डालो।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः।
अरं शक्र परेमणि।।

–पू० ३.१.२.६

भावार्थ–हे परमेश्वर! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्य युक्त हैं। आप ही अपने तुल्य हैं। कृपया हमको ऐसा सामर्थ्य दीजिये, जिससे आपके यश और ध्यान में मग्न होकर हम मोक्ष को प्राप्त हो सकें।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः।।

–पू० २.२.१०.९

भावार्थ–जैसे सब नदियाँ समुद्र के सामने जाकर नम्र हो जाती हैं, ऐसे ही सब मनुष्य उस महातेजस्वी परमात्मा के सम्मुख नम्र हो जाते हैं, उस परमात्मा का तेज सबको दबा देने वाला है।

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः।
स्मसि स्थातर्हरीणाम्।।

–पू० २.२.१०.९

भावार्थ–दयामय परमात्मन्! आप जैसा न कोई है, न हुआ, और न होगा इसलिए आपके सदृश आप ही हैं। भगवान्! आप मनुष्य आदि सब प्राणियों के आश्रय देने वाले, सबके पथ-प्रदर्शक हैं। सबको जानने वाले सबके अधिष्ठाता हैं। आपकी ही हम शरण में आए हैं।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
सवीरमग्न आहुत।।

–पू० १.१.३.६

भावार्थ–हे सेवनीय प्रजापालक भक्तवत्सल परमात्मन्! हम आपके सेवक, आप महात्मा सन्तजनों के सेवनीय प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर का, सदा अपने हृदय में बड़े प्रेम से ध्यान करते हैं। आप दया के भण्डार अपने भक्तों का सदा कल्याण करते हैं।

वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र न आयूंषि तारिषत्।।

–पू० २.१.७.१०

भावार्थ–हे दयामय जगदीश! आपकी कृपा से ही वायु की शुद्धि द्वारा और औषध के सेवन से बल, नीरोगता प्राप्त होकर आयु की वृद्धि और सुख की प्राप्ति होती है।

''अन्तिम संस्कार की सर्वोत्तम रीति''

ले.-रामफल सिंह आर्य C-18 तृतीय तल आनन्द विहार उत्तम नगर नई दिल्ली-59

वैदिक परम्परा में मानव जीवन को उन्नत बनाने के उद्देश्य से हमारे ऋषियों ने सोलह संस्कारों का विधान किया है। इनमें से पन्द्रह संस्कार जहां उच्च से उच्चतर स्थिति की प्राप्ति कराने वाले हैं, वहीं सोलहवां अर्थात् अन्तिम संस्कार मरणोपरान्त किया जाने वाला संस्कार है। यद्यपि यह दिवंगत आत्मा के कल्याणार्थ अथवा उन्नति के लिये तो नहीं है तथापि जिस शरीर में वह आत्मा निवास कर रहा था और उसी शरीर के माध्यम से उसका सम्बन्ध उसके कुटुम्बी जनों एवं अन्य लोगों के साथ रहा तो उस शरीर को उचित प्रकार से समाप्त करना उनका कर्तव्य बनता है। यह विधि ऐसी होनी चाहिये कि जिससे गल सड़ कर वह शरीर दुर्गन्धादि न फैला सके और एक धार्मिक क्रिया का भी रूप ले सके। इतना ही नहीं अपितु पूरे मान सम्मान के साथ उसके मृत शरीर को अन्तिम विदाई दी जा सके तथा उस विदाई में भी एक संदेश निहित हो। संसार के विभिन्न देशों में मृत शरीर की इस अन्तिम क्रिया के कई प्रकार प्रचलित हैं जैसे पृथ्वी के भीतर गाड़ना, जल-प्रवाह करना, किसी ऊंचे स्थान पर रख देना जहां पक्षियों द्वारा उसे खा लिया जाये और जलाना। इनमें से विधियां अर्थात् गाड़ना और जलाना व्यापक रूप से प्रचलित हैं तथा पारसियों में ऊँचे स्थान पर चील-कौवों आदि के भक्षणार्थ रखा जाना तीसरे स्थान पर आता है। ईसाई और मुस्लिमों द्वारा शवों को दफनाया जाता है। इसके पीछे उनका यह विश्वास कि कयामत के दिन सब लोगों के कर्मों का हिसाब होगा, 'योमिल आखिरे' अर्थात् अन्तिम दिन खुदा के फरिश्ते सुर फुकेंगे और सब मुर्दे क्रबों से उठ खड़े होगें उसके पश्चात् उनके कर्मों के हिसाब से उन्हें दोजख या जन्नत में भेजा जायेगा। इस समय हमें इनके इस ज्ञान पर कुछ भी नहीं कहना है, हमारा उद्देश्य तो केवल यह दिखलाना मात्र था कि मुर्दों को गाड़ने का कारण क्या है।

पारसी लोग अपने मृतकों के शवों को एक ऊँचे स्थान पर जिसे वे 'टावर आफ साइलैंस' कहते हैं रख देते हैं जिन्हें चील, गिद्ध, कौवे आदि पक्षी खा जाते हैं।

हम लोग एक बार मुम्बई घुमने के लिये गये। उस समय इस 'टावर आफ साइलैंन्स' में दुर्गन्ध आ रही थी कि वहां खड़ा होना तो दूर की बात है परन्तु चलते हुए भी कठिनाई अनुभव हो रही थी। शवों को नोंचने वाले पक्षियों का एक विशाल झुण्ड वहां पर उपस्थित था। मांस खा जाने के उपरान्त जो अस्ति पिंजर रह जाता है, उसे टावर के निचले भाग में बने कूएं में डाल दिया जाता है। इस सारी प्रक्रिया में जो प्रदूषण फैलता है, उससे कितनी वायु दुर्गन्धित हो जाती है और आस पास रहने वालों पर भी रोग की आशंका बढ़ जाती है, इसका अनुमान आप इस दृश्य की कल्पना से ही लगा सकते हैं। हर समय मांसाहारी पक्षियों के मँडराते रहने से और उनकी कर्कश ध्वनि से जो दृश्य उपस्थित होता है वह तो विभत्स है ही। जल प्रवाह करने पर भी शव यद्यपि मछलियों आदि द्वारा खा लिया जाता है तथापि उससे भी जल प्रदूषण पर्याप्त रूप में होता है और जहां जाकर इन शवों के अवशेष रह जाते हैं, वहां भी बहुत अधिक दुर्गन्ध फैलती है। जो शव भूमि में गाड़े जाते हैं उनसे भी भूमि के अन्दर भयानक प्रदूषण फैलता है और धीरे-धीरे भूमि भी कम होती जाती है। वर्तमान समय में महानगरों में जहां मनुष्यों के अपने रहने के लिये ही स्थान नहीं बचे हैं वहां पर 'कब्रिस्तान' में शवों की वृद्धि के कारण बहुत कठिनाई आ रही है।

अब शेष रह जाती है शवों को जलाने की प्रथा। यह प्रथा संसार की प्राचीनतम प्रथा है जिसे न केवल भारतवर्ष अपितु समस्त संसार के लोग करते चले आये हैं। भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य सभी सभ्य देशों में इस रीति का ही प्रचलन रहा है। आर्य जगत के उच्चकोटि के विद्वान डा. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार जी 'संस्कार चन्द्रिका' में लिखते हैं:-

''कोई समय था जब यूरोप में सर्वत्र रोम का आधिपत्य था। उस समय रोमन राज्य में उच्च-वर्ग के लोग मुर्दों को जलाते थे, गाड़ते नहीं थे। रोमन लोगों की देखा देखी यूरोप में भी मुर्दों को जलाया जाता था। रोमन लोगों ने यह रीति ग्रीस लोगों से ली थी और ग्रीस पर किसी समय भारत की विचारधारा का प्रभाव था। अत: भारत से ग्रीस, ग्रीस से रोम और रोम से यूरोप में यह विधि सर्वत्र फैली। इसके बाद अब ईसाइयत का प्रचार हुआ और सृष्टि की समाप्ति के दिन हर व्यक्ति के सशरीर उठ खड़े होने (Ressuretion) के विचार ने जन्म लिया तब मृतक को जला देने का चर्च की तरफ से विरोध हुआ। यह इसीलिये हुआ कि अगर शव को जला दिया गया तो आखिरी दिन जब हर व्यक्ति के पुण्य पाप का लेखा जोखा होकर स्वर्ग नरक का बंटवारा होगा, तब शरीर के भस्म हो जाने पर किसे स्वर्ग मिलेगा, किसे नरक मिल सकेगा? जब शरीर ही न रहा तो पुनरूत्थान (Ressuretion) कैसे होगा? ईसाइयत के फैलने से पाश्चात्य जगत में तो अग्निदाह पर रोक लग गई परन्तु पूर्वी देशों में यह विधि चलती रही।

1874 ईस्वी तक विश्व में मृतक के शरीर को निपटाने की यह स्थिति थी। उस समय इंग्लैंड में विक्टोरिया का सर्जन हैनरी थौम्पसन था। 1873 में बायना में एक प्रदर्शनी हुई जिसमें मृत दाह करने की एक भट्टी दिखाई गई थी जो इटली में कहीं-कहीं मुर्दों को जलाने के काम आती थी। सर थौम्पसन इस मृत दाह की भट्टी को देखकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने ब्रिटेन में श्मशानों की जो दुर्गति देखी थी, इस भट्टी को देखकर उनकी वे स्मृतियां ताजा हो गई। वे सोचने लगे कि शवों का निपटारा करने के लिये इस प्रकार की श्मशानें क्यों न बनवाई जाये, जिनमें शवों को गाड़ने के स्थान पर उन्हें जलाया जाए। परिणामस्वरूप उन्होंने शवदाहक विचार को मूर्तरूप देने के लिये एक संस्था बनाई जिसका नाम था- Creation Society of England. शवदाह के विचार को दृढ़ आधार देने के लिये उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था-Creation The Tourment of Body of the Death, सर थौम्पसन के विचारों के साथ उस समय के वैज्ञानिकों, लेखकों, कलाविदों ने सहमति प्रकट की। इन लोगों ने मिलकर 13 जनवरी 1874 को जिस क्रिएशन सोसाइटी की स्थापना की उसका घोषणापत्र था:-

''The promoters disapprove the presault System of burying the ahead and corish to substitute source method which would rapidly resolve the body into elements by a prours which coued not offend the bring and could rember the remains perfectly whose wores'' अर्थात् इस संस्था के अभिभावक मुर्दे गाड़ने की प्रचलित रीति का अनुमोदन नहीं करते और चाहते हैं कि इसकी जगह कोई ऐसी विधि अपनाई जाये जिससे शरीर शीघ्र से शीघ्र घटक तत्त्वों में विलीन हो जाये और जिस रीति से न तो जीवित व्यक्ति तिरस्कृत हों और साथ ही मृत शरीर भी सर्वथा दोष रहित हो जाये।''

''इंग्लैंड में शवदाह के लिये गिने चुने लोग ही तैयार होते थे, यद्यपि 1902 में शवदाह कानून बन चुका था। इस दिशा में विशेष प्रगति द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुई। मरने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि इनको दफनाने की देरी होने लगी।''

अमेरिका में भी इस प्रथा का सूत्रपात 1876 से हुआ। अमेरिका में शवदाह के बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिका में 230 शवदाह गृह बन चुके थे। 1970 में एक वर्ष में 88,000 मृतकों का दाह संस्कार हुआ था।'' (पृष्ठ-513-514)

इतने विवरण के उपरान्त आईये अब विचार करते हैं कि सबसे उत्तम विधि कौन सी है और क्यों? यह तो इस उपरोक्त वर्णन में लिख ही चुके हैं कि जलाने की रीति के अतिरिक्त अन्य रीतियों से भंयकर प्रदूषण होता है, बहुत सी भूमि बेकार हो जाती है। इसके अतिरिक्त गाड़ने में एक दोष और भी है कि कई बार कुछ विकृत मानसिकता वाले लोगों द्वारा कुछ ऐसे कृत्य कर दिये जाते हैं जिनसे पूरी मानवता ही लज्जित हो उठती है। सन् 1992-93 के आस पास की बात है जिसका वर्णन लगभग कई समाचार पत्रों में हुआ था। किसी सुन्दर युवति के प्रेम में पागल एक युवक उससे शारीरिक

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

विकास दुबे को उसके कर्मों का फल मिला

गीता में योगीराज श्रीकृष्ण महाराज ने संदेश दिया है कि- अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्म कृतं शुभाशुभम् अर्थात् व्यक्ति को अपने किए हुए शुभ और अशुभ सभी कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ा है। नीति शास्त्रकारों ने मनुष्य के कर्म करने की तुलना किसान के साथ की है। वे कहते हैं कि- यो यद् वपति बीजं लभते हि तादृशं फलं अर्थात् जिस प्रकार एक किसान अपने खेत में जिस फसल का बीज बोता है, वही बीज फसल के रूप में किसान काटता है। इस सिद्धान्त के विरूद्ध न कभी आज तक हुआ है और न कभी आगे होगा। इसलिए कहावत प्रसिद्ध है कि बोये पेड़ बबूल के तो आम कहाँ से होय। यही व्यवस्था परमात्मा द्वारा बनाई गई सृष्टि में मनुष्यों के ऊपर लागू होती है। परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने के लिए स्वतन्त्र रखा है। इन्सान जैसा चाहे कर्म कर सकता है। अच्छे या बुरे कर्म मनुष्य की विवेक शक्ति के ऊपर निर्भर करते हैं। मनुष्य अपने जीवन में जैसे-जैसे कर्म करता जाता है, वैसे-वैसे ही उसके जीवन का निर्माण होता जाता है। परन्तु परमात्मा ने मनुष्य को केवल कर्म करने की स्वतन्त्रता दी है। कर्मफल व्यवस्था परमात्मा के अधीन है। जैसे कर्म किये हैं, वैसा ही फल मिलेगा। यह निश्चित है क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है। परमात्मा मनुष्य द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कर्मों को जानने वाला है। परमात्मा के आगे किसी की सिफारिश नहीं चलती, परमात्मा को कोई रिश्वत नहीं दे सकता, इसलिए परमात्मा को पूर्ण न्यायकारी कहा गया है। परमात्मा की अटल न्याय व्यवस्था से कोई भी आज तक न तो बचा है, न ही आगे बचेगा। इसलिए अच्छे कर्म करने वाला व्यक्ति निर्भय होता है। बुरा कर्म करने वाला व्यक्ति हर समय भयभीत होता है। उसके मन में सदैव यह शंका रहती है कि कभी मेरे बुरे कर्म सामने न आ जाएं। बुरे कर्मों के सामने आते ही उसे उन कर्मों का फल मिलना शुरू हो जाता है।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार समाज के प्रति करता है उसके प्रति भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। चाणक्यनीति के 17 वें अध्याय में चाणक्य ने लिखा है कि-

कृते प्रतिकृतं कुर्याद् हिंसने प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत्।।

अर्थात् उपकार करने वाले के प्रति प्रत्युपकार करना चाहिए, हिंसा करने वाले के प्रति हिंसा का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने पर दोष नहीं होता क्योंकि दुष्ट के प्रति दुष्टता का आचरण करना चाहिए, वही उचित होता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के सातवें नियम में लिखा है- सबके साथ प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए। उपकारी के प्रति प्रत्युपकार करना चाहिए परन्तु जो हमारा नाश करने पर उतारू हैं, हमारी संस्कृति, सभ्यता और धर्म का ही नाश करने पर तुला हुआ है, ऐसे दुष्टों का तो वध ही कर देना चाहिए। वेद का आदेश है

मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः।

अर्थात् हे मनुष्य! तू मायावियों को, दुष्टों को, छल करने वालों को मार गिरा। महर्षि व्यास का कथन है कि-जो मनुष्य जिसके साथ जैसा व्यवहार करे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, यह धर्म है। ठगी से व्यवहार करने वाले के साथ ठगी का व्यवहार करना चाहिए और भला करने वाले के साथ भलाई का व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रों में, वेदों में दुष्टों की निन्दा की गई है और यथापूर्वक व्यवहार करने का आदेश दिया गया है।

कुख्यात अपराधी विकास दुबे का मुठभेड़ में मारा जाना इस बात को साबित करता है कि अपराधी चाहे कितना भी बड़ा हो, वह सिस्टम से ऊपर नहीं हो सकता। अपनी पूरी जिन्दगी उसने जिन अपराधों को अंजाम दिया था, लोगों की हत्याएं की, उन्हीं कर्मों के कारण वो मारा गया। अगर विकास दुबे ने इस कर्मफल की व्यवस्था को समझा होता, अच्छे लोगों के साथ बैठता तो आज उसकी ये दशा न होती। बुरे कर्मों का फल कितना भयंकर होता है, यह विकास दुबे की मौत से साबित हो रहा है। अन्य लोगों के साथ-साथ उसके माता-पिता, पत्नी, बच्चे भी कह रहे हैं कि अच्छा हुआ। इसके साथ यही होना चाहिए था। जो माता-पिता अपने बच्चों को जन्म देते हैं, पाल पोस कर बड़ा करते हैं वही जब उसके मरने पर अफसोस करने के बजाय ये शब्द कहें कि अच्छा हुआ मार दिया तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। ऐसे इन्सान का इस संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेने का लाभ ही क्या? अगर वही विकास दुबे ईमानदारी से अपना जीवन-यापन करता, अपने माता-पिता की सेवा करता, ईमानदारी से बच्चों को पढ़ाता तो क्या वे उसके मरने पर ऐसा कहते? ऐसी धन-दौलत, नाम कमाने का क्या लाभ जिसका परिणाम अपयश हो, मृत्यु हो। शायद विकास दुबे ने भी इसी बात को नहीं समझा था। इसलिए वो अपराध करता गया। फिरौती लेकर हत्याएं करना, अपहरण करना, लोगों को डराना उसने अपना धंधा बना लिया। ऐसे लोगों का अंत में यही परिणाम होता है। शास्त्रों में कहा गया है कि-यस्य कीर्ति सः जीवति, अपयशो वै मृत्युः अर्थात् अच्छे कर्मों के द्वारा जिस व्यक्ति का इस संसार में यश है कीर्ति है, उसी का जीवन सफल है, उसी का इस संसार में आना सार्थक हुआ है। जिस व्यक्ति ने बुरे कार्यों के द्वारा समाज में दहशत फैलाई है, चारों ओर भय का वातावरण बनाया है, ऐसा व्यक्ति जीते जी भी मरे हुओं के समान है क्योंकि शास्त्रों में अपयश को ही मृत्यु कहा गया है। ऐसे व्यक्ति का इस संसार में आकर जीने का क्या लाभ जिसके मरने पर पूरा गांव खुशी मनाएं। इसलिए हर अपराधी मानसिकता वाले व्यक्ति को इस बात को भली-भांति समझ लेना चाहिए कि पाप के फल से बचा नहीं जा सकता। समय रहते अगर अपने आपको संभाल लिया तो इस प्रकार का अंत नहीं होगा।

उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा भले ही मुठभेड़ करके इस कुख्यात अपराधी का अंत कर दिया हो परन्तु यह मुठभेड़ एक फिल्मी कहानी की तरह लग रही है। अपराधी के मारे जाने से पूरा समाज खुश है परन्तु यह मुठभेड़ अपने पीछे कई प्रश्न खड़े कर गई है, जिसका समाधान शायद कभी न हो सके। सबसे बड़ा सवाल यह उठ रहा है कि इस मुठभेड़ में विकास दुबे को मारकर बचाया किसे गया? इतने कुख्यात अपराधी, हिस्ट्रीशीटर को बिना हथकड़ी के क्यों ले जाया जा रहा था? विकास दुबे के मरने का किसी को कोई दुःख नहीं है, न उसके साथ किसी की कोई सहानुभूति है। परन्तु उसकी मौत के साथ ही कई ऐसे राज दफन हो गए हैं जो समाज के सामने कभी न आ पाएं। आज लोग यह जानना चाहते हैं कि विकास दुबे को अपराधी बनाने वाले सिस्टम में बैठे हुए लोगों का पर्दाफाश हो। कौन लोग हैं जो विकास दुबे का साथ दे रहे थे? सिस्टम में बैठे हुए कौन लोग थे जिनके बलबूते पर उसने आठ पुलिस वालों की नृशंस हत्या कर दी? बिना प्रशासन की सहायता के कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के अपराध को अंजाम नहीं दे सकता। इस मुठभेड़ के पीछे उन सभी लोगों को छिपाया गया है जो विकास दुबे का हर अपराधिक गतिविधि में साथ दे रहे थे। जब तक ऐसे लोगों का पर्दाफाश नहीं होता, उनका असली चेहरा समाज के सामने नहीं आता तब तक एक विकास दुबे के मरने से कुछ नहीं होगा। सिस्टम में बैठे लोग अपने स्वार्थ के लिए कई विकास तैयार कर लेंगे। इसलिए उन सभी लोगों का पता चलना बहुत जरूरी है जो अपने स्वार्थ के लिए, वोट बैंक की राजनीति के लिए ऐसे अपराधियों का साथ देते हैं, उनसे हत्याएं करवाते हैं। विकास दुबे के साथ वो सभी बातें दफन हो गई जो उसके दिल में थी। विकास दुबे अगर जिन्दा रहता तो वो सभी लोग सामने आ जाते जो शराफत का चोला पहनकर समाज के ठेकेदार बने हुए हैं।

हर आपराधिक मानसिकता वाले व्यक्ति का समाज को बहिष्कार करना चाहिए, उसे किसी धर्म, जाति के साथ जोड़कर नहीं देखना चाहिए। अपराधी का कोई धर्म नहीं होता, वो सम्पूर्ण मानवता का दुश्मन होता है। ऐसे व्यक्तियों को धर्म के साथ जोड़कर धर्म का अपमान करना है। इसलिए समाज के हर जागरूक नागरिक का कर्त्तव्य है कि अपने आसपास ऐसे ही अपराधिक मानसिकता वाले लोगों की पहचान करें, उन्हें समाज से बहिष्कृत करें और भयमुक्त समाज का निर्माण करें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

समावर्त्तन संस्कार

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, दादाबाडी कोटा (राज.)

वैदिक संस्कृति में संस्कारों का बड़ा महत्व है। संस्कार का अर्थ है व्यक्ति में आमूल चूक परिवर्तन कर देना, उसको दुष्ट प्रवृत्तियों से मुक्त कर श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का स्वामी बना देना। संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होकर मृत्यु पर्यन्त चलते रहते हैं। चूंकि बाल्य काल में बालक की प्रवृतियों को बदल देना सरल होता है। इसलिए गर्भाधान से लेकर वेदारम्भ तक ग्यारह संस्कार हो जाते हैं। फिर वेदारम्भ संस्कार, जो बालक की 8 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर किया जाता है उसके बाद बालक गुरूकुल में अध्ययन करने चला जाता है अत: उसकी अध्ययन की समाप्ति के पूर्व कोई संस्कार नहीं होता है। अध्ययन की समाप्ति के अवसर पर समावर्तन संस्कार किया जाता है जो गुरूकल में ही मनाया जाता है। समावर्तन संस्कार का अर्थ है बालक द्वारा शिक्षा समाप्त कर घर की ओर लौट आना। जब तक बालक गुरूकुल में अध्ययन करता है तब तक उसे गुरूकुल के नियमों का पालन करना होता है। उसे ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करना होता है, बाल नहीं बनाना होता है, जमीन पर सोना होता है, मेखला और दण्ड को धारण करना होता है, बालों में तेल लगाना, आंख में अंजन लगाना, दर्पण में मुंह देखना, धूप में छाता लगाना आदि का त्याग करना होता है। पैरों में जूता भी नहीं पहनना होता है। समावर्त्तन के अनन्तर ही से इन कार्यों के करने की आज्ञा मिलती है। विद्याध्ययन काल सामान्य ब्रह्मचारी के लिए 16 वर्ष का होता है। जो छात्र 16 वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रह कर गुरूकुल में विद्या अध्ययन करता है उसे वसु संज्ञा दी जाती है। यह अध्ययन वर्तमान काल के स्नातक स्तर का होता है। फिर जैसे वर्तमान में कुछ छात्र स्नातक उपाधि के बाद स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर पी.एच.डी. और डी.लिट. डी.एस-सी आदि उपाधियों के लिए कार्य करते हैं और 7-8 वर्षों में इनको प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही जो छात्र 24 वर्ष की आयु अथवा 16 वर्ष अध्ययन करने के उपरान्त भी आगे अध्ययन करना चाहें तो कम से कम 12 वर्ष उन्हें और अध्ययन करना होता है वे रूद्र संज्ञक कहे जाते हैं। उनकी शिक्षा 36 वर्ष की आयु में जाकर पूर्ण होती है। यदि छात्र इससे भी आगे अध्ययन करना चाहे तो वह 12 वर्ष और अध्ययन करता है और उसकी शिक्षा 48 वर्ष की आयु में जाकर पूर्ण होती है उसे आदित्य ब्रह्मचारी कहा जाता है। विवाह सदैव शिक्षा समाप्ति के उपरान्त ही किया जाता है। हजारों विद्यार्थियों में कोई 1,2 विद्यार्थी ही आदित्य ब्रह्मचारी बनते हैं और उनके आचार्य भी बहुत अल्प संख्या में पाए जाते होंगे। समावर्त्तन संस्कार के अवसर पर गुरूकुल का आचार्य स्नातकों को अन्तिम उपदेश देता था। उपदेश में वह उन्हें अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद कैसे जीवन जीना है यह बताता था। यह संस्कार कुछ ऐसा होता था जैसे वर्तमान काल में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में 'कन्वोकेशन डे' मनाया जाता है। उस समय आचार्य जिस प्रकार का उपदेश देता था उसका प्रतीक तैत्तिरियोपनिषद् की शिक्षावल्ली के अनुवाक 11 में दिया गया उपदेश है। उपनिषद् में कहा गया है-

वेदमनूच्चार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद:। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सी:। स्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।।1।।

अर्थ-आचार्य वेद पढ़कर समीप रहने वाले शिष्य को उपदेश करता है-सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में प्रमाद न करो। आचार्य के लिए प्रिय धन को लाकर अर्थात् शिक्षा समाप्ति के बाद उचित दक्षिणा देकर प्रजा के सूत्र को मत तोड़ो अर्थात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर श्रेष्ठ सन्तान को जन्म दो। सत्य बोलने में कभी प्रमाद मत करो। धर्माचरण में आलस्य मत करो। कुशल अर्थात् उपयोगी और कल्याणप्रद कर्मों में प्रमाद मत करो। ऐश्वर्य की वृद्धि में प्रमाद मत करो। पढ़ने और पढ़ाने में कभी प्रमाद मत करो!

विषय को आगे बढ़ाते हुए उपनिषद में कहा गया है-

देवपितृ कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव।

आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि।।2।।

देव और पितृ सम्बन्धी कार्यों में प्रमाद न कर। माता को देवी मानना और पिता को देव मानना। आचार्य को देव मानना। अतिथि को देव मानना। जो अनिन्दित कर्म हैं उनका सेवन करना। हमारे जो अच्छे कर्म हैं उनका तुम सेवन करना। अन्यों का नहीं।

नो इतराणि। ये के चास्मच्छे यांसो ब्राह्मणा: तेषां त्वयाऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धा देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्म चिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्।। और जो कोई हमसे श्रेष्ठ अन्य ब्राह्मण (विद्वान्) हैं उनका तुमको आसन देकर सत्कार करना चाहिए। लज्जा से भी दान करना चाहिए। भय से दान देना चाहिए, प्रेम भाव से दान देना चाहिए और जो तुमको कर्म में सन्देह हो अथवा वृत्त आचार, व्यवहार में सन्देह है।

ये तत्र ब्राह्मणा: सम्मर्शिन: युक्ता: अयुक्ता: अलूक्ष्य धर्मकामा: स्यु: यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथा:।। एष आदेश:। एष उपदेश:।।4।।

जो वहां धर्म करने में प्रवृत्त या किसी प्रेरणा से धर्म कार्य करने वाले निर्दयता रहित, धर्मात्मा, सम्यक् विचार करने में समर्थ ब्राह्मण हों जैसा वे वहां व्यवहार करते हों वैसा ही तुम भी वहां व्यवहार करना। यह वेद का आदेश है और यही हमारा उपदेश है।

समावर्त्तन संस्कार में ही ब्रह्मचारी विशेष रूप से स्नान करके नए वस्त्र धारण करता है। सिर, दाढ़ी, मूंछ के बाल बनाता है। सिर पर तेल लगाता है। आंखों में अंजन लगाता है और दर्पण देखता है। अथर्व. वेद में भी समावर्त्तन संस्कार में किए जाने वाले कृत्यों का संकेत है। अथर्व। काण्ड 2 सूक्त 13 में इस विषय में 5 मंत्रों द्वारा वर्णन किया गया है।

पहले मंत्र में ब्रह्मचारी के लिए शुभ कामना व्यक्त की गई है।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।

घृतं पीत्वा मधु चारू गव्यं पितेव पुत्रनभि रक्षितादिमम्।। अथर्व. 2.13.1

अर्थ-हे तेजस्वी परमेश्वर। तू जीवनदाता और स्तुति योग्य कर्म को स्वीकार करने वाला, प्रकाश स्वरूप और प्रकाश से सींचने वाला है। हे तेजस्वी ईश्वर। अग्नि के समान मधुर, निर्मल गो के घृत को पीकर, पिता के समान पुत्रों को इस ब्रह्मचारी की सब ओर से रक्षा कर।

अगले मंत्र में विषय को विस्तार देते हुए कहा गया है-

परिधत्त धत्त नो वर्चसे जरामृत्युं कृणुतु दीर्घमायु:।

बृहस्पति: प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ।।2।।

हे विद्वानों। (न:) हमारे लिए (इमम्) इस ब्रह्मचारी को (परि धत्त) वस्त्र पहराओ और (वर्चस:) आयु अथवा धन प्राप्ति और (जरा मृत्युम्) बुढ़ापे से मृत्यु (कृणुत) करो। (बृहस्पति:) बड़े-बड़े विद्वानों के रक्षक (राजा व आचार्य) ने (एतत्) यह (वास:) वस्त्र (सोमाय) सूर्य समान (राज्ञे) ऐश्वर्य वाले (ब्रह्मचारी) को (उ) ही (परिधातवै) धारण करने के लिए (प्रायच्छद्) प्रदान किया है।

भावार्थ-जब ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर चुके तब विद्वान् पुरूष उसका सत्कार करे और प्रधानाचार्य अथवा राजा विशेष वस्त्रादि प्रदान करके उसे अलंकृत करे, उसका मान बढ़ावें।

परीदं वासो अधि था: स्वस्तयेऽभूर्गुष्टीनाम भिशस्तिपा उ।

शतं च जीवशरद: पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्यवस्व।।3।।

अर्थ-(हे ब्रह्मचारिन्) (इदम्) इस (वास:) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिए (परि अधिथा:) तूने धारण किया है। (गृष्टीनाम्) ग्रहणीय गौओं को (अभिशस्तिपा:) हिंसा की रक्षा करने वाला (उ) अवश्य (अभु:) हुआ है। (च) निश्चय करके

(शेष पृष्ठ 7 पर)

''मुक्ति सम्बन्धी संक्षिप्त विवेचना''

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड़ सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

मुक्ति का अर्थ तथा साधन-महर्षि दयानन्द के आने से पहले मुक्ति का अर्थ सदैव के लिए जीवन मरण से मुक्ति पा लेना था यानि मुक्त जीव सदैव के लिए ईश्वर के सान्निध्य में रहकर आनन्द प्राप्त करना था। मुक्त जीव फिर धरती पर न आकर हमेशा के लिए मोक्ष प्राप्त कर लेता था और अपना सम्पूर्ण जीवन ईश्वर के सान्निध्य में रहकर आनन्द प्राप्त करता रहता था। परन्तु महर्षि ने वेदों को पढ़कर बताया कि मोक्ष प्राप्ति अपने पूरे जीवन भर अच्छे परोपकारी कार्यों का फल है। यदि अच्छे परोपकारी कार्यों को करने की एक सीमित अवधि है तो फल की अवधि भी निश्चित ही होनी चाहिए, चाहे वह अवधि कितनी भी बड़ी हो परन्तु अवधि भी निश्चित ही होगी। इसी के आधार पर महर्षि जी ने वेदों से जानकर मुक्ति की अवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों की बताई है। यानि ३६ हजार बार सृष्टि व प्रलय होने तक की बताई है। एक सृष्टि की आयु ४ अरब 32 करोड़ वर्ष की होती है और प्रलय की भी आयु उतनी ही होती है। इसलिए एक सृष्टि और एक प्रलय की आयु ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष हुई। इसको यदि हम ३६००० का गुना करेंगे तो ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष की हो जायेगी। यह बात महर्षि दयानन्द में बताई।

महर्षि दयानन्द ने मोक्ष का अर्थ बताया है दु:खों से छूटकर सुख को प्राप्त होना और ब्रह्म में आनन्द के साथ मुक्ति की अवधि तक विचरण करना। इसके उपरान्त फिर धरती पर अच्छी पुरूष योनि में जन्म लेकर पहले की भाँति ही जन्म-मृत्यु के चक्कर में ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार योनियों में घूमकर पुन: मनुष्य की योनि में आकर फिर से जीवन भर अच्छे परोपकारी कर्म करके पुन: मुक्ति में जाना। मुक्ति पाने के साधन है। पहला ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुऐ यानि वेदानुकूल चलते हुऐ अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार और बुरे व्यसनों से अलग रहते हुए सत्य-भाषण, परोपकार विद्या पक्षपात रहित न्याय और धर्म की वृद्धि करना है दूसरा है-ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हुए योगाभ्यास करना इत्यादि उत्तम साधनों के करने से मुक्त प्राप्त होती है।

मुक्ति में जीव की अवस्था-मुक्ति में जीव का ईश्वर में लय नहीं होता बल्कि वह अलग विद्यमान रहता है और स्वेच्छाचारी होकर बिना रूकावट आनन्दपूर्वक सर्वत्र विचरता है। मुक्ति में जीव का स्थूल शरीर नहीं रहता उसका सत्य संकल्प शरीर रहता है। वह जीव अपनी इच्छा मात्र से सब सुख व आनन्द भोग लेता है। वह अत्यन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता हुआ शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता है। अन्य मुक्ति जीवों के साथ मिलता तथा सृष्टि, विद्या के क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में अर्थात् जितने लोक प्रत्यक्ष दिखते है तथा जो नहीं दीखते उन सब में भी घूमता रहता है। जिस जीवात्मा का जितना ज्ञान अधिक होता है। मुक्ति में उसको उतना ही आनन्द भी अधिक आता है। यही सुख विशेष स्वर्ग और विषय तृष्णा में फंसकर दु:ख विशेष भोग करना नरक कहलाता है।

मुक्ति से लौटना-कुछ लोग ''न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते'' (छान्दोग्य उपनिषद्) ''अनावृत्ति शब्दा-दनावृत्ति: शब्दात्'' (वेदान्त दर्शन) इन प्रमाणों के आधार पर ऐसा कहते हैं कि मुक्ति के पश्चात् जीव पुन: संसार में नहीं आता। परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। इसका सही अर्थ यही है कि मुक्ति का परान्तकाल पूर्व में नहीं लौटते। महाप्रलय के पश्चात् तो लौटते ही है। वेद में कहा है:-

अग्रेर्वयं प्रथमस्या मृतानां मनामहे चारू देवस्य नाम।
स नो महा अदितये पुनर्दात् पितंर च दृशेयं मातरं च।।

ऋ. १/२४/२

हम निराकार स्वरूप अनादि तथा सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जाने जो हमें मुक्ति में आनन्द भोग कर पृथ्वी में पुन: माता-पिता के द्वारा जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। इस प्रमाण से स्पष्ट है कि मुक्ति के पश्चात् भी जीव लौटता है।

मुक्ति से लौटने के प्रमाण-मुक्ति से लौटने का निम्न प्रमाण है:

१. जीव का सामर्थ्य, शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित है, पुन: उनका फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य कर्म और साधन जीवों में नहीं इसलिए अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य है, उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता।

२. यदि मुक्ति से लौटकर कोई भी जीवात्मा संसार में न आये तो शनै:-शनै संसार का उच्छेद अर्थात् जीवों की समाप्ति हो जायेगी।

यदि यहाँ यह कहा जाये कि जितने जीव मुक्त होते हैं, ईश्वर उतने ही नये जीव बना लेता है तो भी ठीक नहीं। ऐसा होने पर जीव अनित्य हो जायेंगे क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी अवश्य होता है। मुक्ति पाकर भी वे नष्ट हो जायेंगे और मुक्ति अनित्य हो जायेगी।

३. यदि मुक्ति से लौटते नहीं तो मुक्ति के स्थान पर बहुत भीड़-भड़क्का हो जायेगा क्योंकि वहाँ अगम अधिक व्यय कुछ भी न होने से बढ़ती का पारावर न रहेगा।

४. सुख का अनुभव सापेक्ष अनुभव है। दु:ख के अनुभव के बिना सुख का अनुभव नहीं हो सकता। जैसे कटु न हो तो मधुर क्या और मधुर न हो तो कटु क्या कहावे, क्योंकि एक खाद के एक रस के विरूद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा ही मीठा खाता जाये तो उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों को भोगने वाले को होता है।

५. यदि ईश्वर अन्त वाले कर्मों का अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये। जो जितना भार उठा सके उस पर उतना ही धरना बुद्धिमानी का काम है। जैसे एक मन भार उठाने वाले के सिर पर दस मन भार धरने से, भार धरने वाले की निन्दा होती है, वैसे ही अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिए ठीक नहीं।

६. यदि परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है तो जिस कारण से वे जीव उत्पन्न होते है, वह कारण चूक जायेगा क्योंकि चाहे कितना ही बड़ा कोई हो जिसमें व्यय है आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जायेगा।

७. यदि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती तो वह जन्म कारागार के समान हो जायेगा, बस इतना ही अन्तर रहेगा कि वहाँ मजदूरी नहीं करनी पड़ती।

मुक्ति के लिए उपाय आवश्यक-मुक्ति से भी लौटना पड़ता है इसलिए मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं है क्योंकि जब तक ३६००० बार सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय होती है इतने समय पर्यन्त जीवों का मुक्ति के आनन्द में रहना और दु:ख न होना क्या छोटी बात है? यह समय कोई कम है कि इतने काल तक निरन्तर सुख में रहने के लिए प्रयत्न न किया जाये। जब आज खाते-पीते है और कल भूख लगने वाली है फिर भी उपाय किया ही जाता है। जब भूख-प्यास, धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिए उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति जो सृष्टि की अवधि ४ अरब 32 करोड़ की और प्रलय की ४ अरब 32 करोड़ का कुल ८ अरब ६४ करोड़ के होते है इनको ३६००० (छत्तीस हजार) से गुणा करने से ३१ नील १० खरब ४० अरब की होती है उसके लिये क्यों न उपाय किया जावे, जैसे मरना आवश्यक है फिर भी जीने का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना भी अत्यावश्यक है।

युवा-पीढ़ी तथा टैक्नोलॉजी

ले.-डॉ. लखवीर सिंह प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, स्नातकोत्तर राजकीय कन्या महाविद्यालय, सेक्टर-42, चण्डीगढ़

आधुनिक परिवेश में जहां एक ओर मूल्यपरक शिक्षा-पद्धति का जिस गति से निरन्तर ह्रास हो रहा है, वहीं दूसरी ओर टैक्नोलॉजी का निर्माण एवं प्रयोग तीव्रातितीव्र गति से बढ़ता ही जा रहा है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में दिन प्रतिदिन नए-नए आविष्कार तथा परिवर्तन भी हो रहे हैं। परिणामस्वरूप आठवीं पीढ़ी (8^{th} Generation) अथवा इससे भी ऊपर के युवाओं के लैपटॉप, कम्प्यूटर, आइपैड, विभिन्न प्रकार के स्मार्ट फोन, स्मार्ट घड़ियां, नए-नए एप्स इत्यादि आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। इसलिए यह कहना कदापि अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आज का युवा भूख-प्यास तो सहर्ष सहन कर सकता है, परन्तु इंटरनेट का वियोग अर्थात् अभाव उसके लिए असहनीय है। यहां यह विशेषोल्लेखनीय है कि यह कोई शोधपत्र नहीं है, केवल और केवल युवाओं को सम्बोधन करते हुए हृदयगत उद्गार व्यक्त करने का प्रयास है।

शास्त्रकार का वचन है-

'सुखार्थी त्यजते विद्यां विद्यार्थी त्यजते सुखम्।

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।।

(विदुरनीति)

अर्थात् सुख की इच्छा करने वाला विद्या छोड़ देता है और विद्यार्थी सुख का त्याग कर देता है। क्योंकि सुखार्थी के लिए विद्या कैसे सम्भव है? और विद्यार्थी के लिए भला सुख कहाँ? कहने का अभिप्राय यह है कि ज्ञान प्राप्ति तथा सुख-साधन एक साथ नहीं रह सकते। इन दोनों का परस्पर विरोध रहा है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि विद्यार्थी के लिए सुख सदैव वर्जित है, अपितु संदेश तो यह है कि नियन्त्रण में रहते हुए धन-सम्पत्ति का सुखोपभोग करना चाहिए। क्योंकि ये सुख के साधन क्षणभंगुर होते है और ये इन्द्रियों के तेज़ को नष्ट करने वाले होते हैं-

'श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः'।

(कठोपनिषद्)

कहने का अभिप्राय यह है कि युवाओं को अपनी ऊर्जा का सदुपयोग अपने सर्वांगीण विकास के लिए करना चाहिए। तत्पश्चात् ही एक स्वस्थ परिवार, समाज तथा राष्ट्र का निर्माण सम्भव है।

कठोपनिषद्, जिसका सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद की कठ-शाखा से है, के अन्तर्गत नचिकेता की रोचक कथा वर्णित है। इस प्रबुद्ध-बुद्धि बालक का सामना यमराज से होता है, जिससे सभी प्राणी सदैव भयभीत रहते हैं। परन्तु कुशाग्रबुद्धि, स्वाध्यायशील एवं निर्भय नचिकेता अपने अद्भुत, आकर्षक एवं तर्कपूर्ण संवादशैली के माध्यम से प्राणान्तक यमराज को भी हतप्रभ एवं प्रसन्न करके तीन वरदान देने के लिए विवश कर देता है। नचिकेता द्वारा मांगे गए तीन वर इस प्रकार हैं-

1. नचिकेता कहता है कि उसके पिता उद्दालक (आरूणि) उसके वियोग में दुःखी हैं (क्योंकि नचिकेता के पिता ने अज्ञानवश क्रोध के आवेग में आकर कह दिया था कि 'वे उसे (नचिकेता को) यमराज को देते हैं अर्थात् मृत्यु को सौंपते हैं, परन्तु जब उन्हें अपनी अज्ञानता का आभास होता है, तो वे बहुत दुःखी होते हैं एवं पश्चात्ताप करते हैं), इसलिए जब वह (नचिकेता) यमलोक से छूटकर अपने पिता के पास जाए, तो वह अपने पिता को प्रसन्नचित्त एवं स्वस्थ देखे और उसके पिता उससे पहले की भांति ही स्नेह करें अर्थात् वे इस अप्रिय वृत्तान्त को ही भूल जाएं।

यहां ध्यान रखने वाली बात यह है कि नचिकेता अपने पहले वर के द्वारा ही मृत्यु से छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त कर देता है।

2. द्वितीय वर के रूप में नचिकेता स्वर्गदायिनी अग्नि का विज्ञान जानने की कामना व्यक्त करता है।

3. तृतीय वर के माध्यम से नचिकेता आत्मतत्त्व को जानने व समझने की अपनी उत्कट अभिलाषा व्यक्त करता है। जबकि इस विषय में यमराज द्वारा उसे अनेक प्रलोभन भी दिए जाते हैं, ताकि वह इस वर के स्थान पर कोई और वर मांग ले, परन्तु नचिकेता अपनी बात से पीछे नहीं हटता।

वस्तुतः देखा जाए तो उक्त तीनों बातें ही हमारे जीवन में महत्वपूर्ण हैं। प्रथम, माता-पिता की प्रसन्नता की कामना करना, द्वितीय, सुखोपभोग की अभिलाषा, तृतीय, जीवित रहते ही आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना। हमारे पूर्वजों ने भी मनुष्य के लिए चार पुरुषार्थों, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का उल्लेख किया है। इसलिए यदि चिन्तन किया जाए, तो वरदान के बदले में नचिकेता द्वारा मांगी गई ये तीनों बातें वर्तमान में भी पूर्णप्रासंगिक हैं। आज बहुत कम युवा ऐसे होंगे, जिन्हें अपने माता-पिता के कष्टों की चिन्ता होगी, स्वयं के लिए उत्तम सुखों की कामना होगी अथवा आत्मतत्व को जानने की उत्कट जिज्ञासा होगी। अतः हमारे युवाओं को काम-काज के साथ-साथ समयानुसार शास्त्राध्ययन भी निरन्तर करना चाहिए। उन्हें स्वाध्याय से आलस्य नहीं करना चाहिए-

'स्वाध्यायान्मा प्रमदः (तैत्तिरीयोपनिषद्')

भारत सदैव ज्ञान का उपासक रहा है। अपनी इसी ज्ञान-परम्परा के कारण भारत ने 'विश्वगुरु' के पद को गौरवान्वित किया है। आज का युवा जिस प्रकार विदेश-गमन को अपना परम सौभाग्य समझता है, प्राचीनकाल में ठीक ऐसा ही दृष्टिकोण विदेशी युवाओं का भारत के प्रति भी रहा है। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी सदृश तेरह विश्व-प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-संस्थान विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। कदाचित् इसीलिए कहा जाता था-

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः'।

स्व स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।'(मनुस्मृति)

अर्थात् यदि किसी ने धर्म, दर्शन तथा आचरण सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करनी है, तो उसे भारतीय गुरुओं एवं आचार्यों की शरण में जाना चाहिए। क्योंकि भारत ने विश्व को वरिष्ठ-विश्वामित्र-भारद्वाज वाल्मीकि-व्यास सदृश सुदीर्घ ऋषि परम्परा, बुद्ध-महावीर सदृश शान्ति के उपदेष्टा, पाणिनि-पतंजलि-कात्यायन-चरक-सुश्रुत-वराहमिहिर-आर्यभट्ट सदृश महान् आचार्य परम्परा, गुरु नानक सहित देश महाने गुरुओं की परम्परा, नामदेव-कबीर-तुकारा-सूरदास-तुलसीदास सदृश महान् सन्त परम्परा प्रदान की है। इसी के साथ वेदध्वज वाहक, महान् योगी, क्रांतिकारी समाजसेवक, दार्शनिक एवं राजनैतिक चिन्तक तथा धार्मिक योद्धा महर्षि दयानन्द सरस्वती सहित स्वतन्त्रता संग्राम में स्वयं को आहुत कर देने वाले अनेक शूरवीर एवं महान् शहीद मंगल पांडे, रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, मदनलाल ढींगरा, ऊधम सिंह, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी इत्यादि अनेक आदर्श विभूतियों का जीवन एवं साहित्य नव-युवाओं के लिए प्रेरणा का अथाह समुद्र है।

देश के इन नायकों ने अपना प्रत्येक क्षण समाज को जागृत करने में समर्पित कर दिया। उस युग में जब न तो टैक्नोलॉजी का कोई विशेष आधार ही था और न ही संचार के अन्य साधन उपलब्ध थे और भारत भी परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, उस अंधकारमय वातावरण में भी इन लोगों ने जन-जन से सम्पर्क साध कर उनकी अन्तरात्मा को आन्दोलित किया। जबकि टैक्नोलॉजी के रंग में पूरी तरह रंगा हुआ आज का युवा फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम तथा वाट्सएप पर तो बड़े गर्व से अपने मित्रों की संख्या का प्रदर्शन करता है, परन्तु वास्तविकता से हम सभी परिचित ही हैं। कदाचित् इसीलिए कालिदास को कहना पड़ा होगा कि न तो कोई वस्तु पुरानी होने के कारण अच्छी होती है और न ही नवीन होने से कोई वस्तु त्याज्य है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति उन दोनों वस्तुओं की तुलना कर बढ़िया को स्वीकार कर लेता है, परन्तु मूर्ख तो दूसरों के इशारों पर चलता है-

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।'

(मालविकाग्निमित्रम्)

इसलिए युवाओं से यही कहना है कि वे इस टैक्नोलॉजी का प्रयोग सोच समझकर करें। वस्तुतः यह उनके लिए एक टूल (Tool) है, सहायक है, नौकर है और एक चौकीदार की तरह है। परन्तु यदि इसे उन्होंने सर्वेसर्वा समझ लिया, तो यह अभिशाप भी बन जाती है। आज इसका प्रभाव छोटे-छोटे बच्चों से लेकर युवाओं तथा बड़ी आयु के लोगों के स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है। प्रतिदिन वैज्ञानिक शोधों द्वारा चौंका देने वाले तथ्य सामने आ रहे हैं। सरकार तथा समाज सेवी संस्थाओं द्वारा जिस प्रकार नशे की लत छुड़वाने के लिए नशा-मुक्ति केन्द्र खोले गए हैं, ठीक उसी प्रकार आज कुछ महानगरों में इस आधुनिक समस्या से छुटकारा दिलवाने के लिए भी केन्द्र खुल चुके हैं। इसलिए **'तेन् त्यक्तेन भुञ्जीथा'** ईशोपनिषद् के इस संदेश को सदैव ध्यान में रखने की परमावश्यकता है।

पृष्ठ 2 का शेष-''अन्तिम संस्कार की सर्वोत्तम रीति''

सम्बन्ध बनाना चाहता था कि अचानक उस युवती की मृत्यु हो गई। वे युवक एवं युवती दोनों ही मुस्लिम सम्प्रदाय से थे। लड़की को दफना दिया गया लेकिन उसी रात्रि में उस युवक ने मृत लड़की की देह को कब्र से निकाला और उसके साथ दुराचार किया। वह व्यक्ति पकड़ा गया और पुलिस को सौंप दिया गया। यह ऐसा घृणित कुकर्म था कि जिसके कारण मानवता शर्मसार हो उठी थी। इसके अतिरिक्त अनेक तान्त्रिकों और जादू होना करने वालों द्वारा भी कुछ घृणित कार्य यदा कदा प्रकाशित होते रहते हैं। यदि शवों को जला दिया जाता है तो इस प्रकार के कुकर्मों की संभावना ही समाप्त हो जाती है। पृथ्वी के भीतर गड़े शवों के कारण न केवल अब कब्रिस्थान की, अपितु आस पास की भूमि भी दूषित हो जाती है और उसके साथ-साथ उस भूमि के उगने वाले अब, फल, सब्जी आदि भी इस दुष्प्रभाव से संक्रमित हो जाते हैं जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इस समय पूरा विश्व कोरोना वायरस के प्रकोप से दहल उठा है और अमेरिका इटली, स्पेन, फ्रांस, चीन, जर्मनी आदि लगभग सभी देशों में प्रतिदिन हजारों की संख्या में लोग मर रहे हैं। कब्रिस्तानों में जगह ही नहीं बची है, यत्र तत्र शवों के ढेर लगे हुए हैं। शवों को सामूहिक रूप से बड़ी-बड़ी कब्रें बना कर दफनाया जा रहा है। इनकी बड़ी संख्या में दफन हुई ये लाशें भूमि के अन्तर क्या परिवर्तन लेकर आयेंगी, यह तो अभी तक अनुमान भी नहीं है। यदि इस महामारी पर नियन्त्रण न पाया जा सका तो परिणाम क्या होंगे यह सोचकर भी भय लगता है।

उपरोक्त परिस्थिति में केवल एक ही अन्तिम विकल्प बचता है और वह शवों को जलाने का। जलाने की प्रक्रिया में केवल 10×10 की जगह में ही अनेकों शवों को जलाया जा सकता है। यद्यपि वैदिक संस्कार में शव को पर्याप्त मात्रा में भी और हवन सामग्री डालकर जलाये आने का विधान है जिससे कि प्रदूषण की कोई संभावना ही न रहे। यदि केवल लकड़ी डालकर भी बिना घी और सामग्री के भी संस्कार किया जाता है तो गाड़ने की अपेक्षा लगभग 85 प्रतिशत प्रदूषण कम होता है। अत: शव को जलाना ही सबसे उत्तम प्रक्रिया है।

इसमें कुछ लोगों को यह आपत्ति हो सकती है कि जलाने के लिये लकड़ी चाहिये और उसके लिये पेड़ों को काटना पड़ेगा तो उससे भी तो पर्यावरण को हानि पहुंचती है तो इसका समाधान यह है कि क्या केवल शवों को जलाने के लिये ही पेड़ों की कटाई होती हैं? विकास के नाम पर प्रतिदिन बड़ी-बड़ी कालोनियां राजमार्ग, हवाई अड्डे आदि बनाये जाते हैं जिससे बहुत की संख्या में पेड़ों की कटाई होती है। न केवल पेड़ अपितु खेती योग्य भूमि का भी अधिग्रहण हो जाता है और अन्न का स्त्रोत भी सदा के लिये समाप्त होता जाता है। उसका क्या समाधान है? क्या अन्न, फल, सब्जियां फैक्ट्रीयों में बनने लग गये हैं? प्रतिवर्ष जंगलों में भीषण आग लग जाती है, क्या उसमें पेड़ों की अपेक्षा कुछ और जलता है? क्या फरनीचर, दरवाज़े खिड़कियां बनाने के लिये लकड़ी का प्रयोग नहीं होता? वह कहां से आती है। शवदाह के लिये लकड़ी के लिये पेड़ काटे जायेगे तो उनके स्थान पर नये पेड़ लगाईये। और मान लीजिये फिर भी समस्या है तो आजकल तो विद्युत शवदाह गृह आ गये हैं, उनका प्रयोग कीजिये। प्रत्येक समस्या का समाधान है। रही बात यह कि अन्तिम संस्कार में जिन मन्त्रों का विनियोग किया गया है, उसका क्या करें? कोई भी कठिनाई नहीं है, वहीं जहां पर विद्युत शवदाह में शव का दहन किया जा रहा है, बैठ कर इन मन्त्रों से यज्ञ कर लीजिये वहां का वातावरण भी शुद्ध हो जायेगा और वह प्रक्रिया भी पूरी हो जायेगी। शव को जलाने से जो रोग के कीटाणु थे विषाणु उस समय शव के अन्दर विद्यमान हैं, वे भी नष्ट हो जाते है। गाड़ने या जल प्रवाह से तो उनके और भी फैलने का भय रहता ही है। कोरोना वायरस से मृत्यु हुए व्यक्ति के शव में तो इन विषाणुओं को भरमार हो रहती है । इनका जलाना तो अति आवश्यक है। अत: सिद्ध हुआ कि शव को जलाना ही सबसे अधिक उपयोगी और उचित रीति है।

एक शंका यह भी है कि शवदाह के लिये बहुत सारा घी और सामग्री लगती है तो इससे व्यय बहुत बढ़ जाता है। निर्धन व्यक्ति उसका प्रबन्ध कहां से करेगा? इसका उत्तर यह है कि जिन्हें अन्तिम संस्कार में घी और सामग्री का व्यय अधिक दिखाई देता है, उन्हें मृत्यु भोज, के पण्डितों के दान पर होने वाला व्यय क्यों दिखाई नहीं देता? जबकि घी और सामग्री कर तो इतना व्यय होता भी नहीं। मान लीजिये कि एक व्यक्ति ने बीस किलो घी और बीस किलो हवन सामग्री का प्रयोग किया तो कितना व्यय हुआ? घी= 20×500 = 10,000/- रूपये और सामग्री= 20×60 = 1200/- स: कुल 10000+1200 = 11,200/- रू। अब उधर दृष्टि दौड़ाईये। खाने पर, मृत्यु भोज पर यदि कम से कम 150 व्यक्ति भी हुए और एक व्यक्ति के भोजन का व्यय 100/- रू भी (यह तो कम से कम है) हुआ तो 150×100=15000/- रू तो यह हुआ। फिर भले पुरोहित को दान दक्षिणा कम से कम 5000/- रू वह लगा लीजिये, यह हुआ 15000+5000= 20000/-रूपये। अब आप स्वयं ही विचार कर लीजिये कि कौन सा अधिक है? रही बात किसी गरीब की तो यदि अन्तिम संस्कार में जाने वाले लोग अपने साथ सौ ग्राम घी और 250 ग्रा. हवन सामग्री भी ले जाये' तो यह समस्या भी हल हो जाती है। समस्या तो यह है कि हम लोग त्रुटियां निकालते है, समाधान नहीं करना चाहते, न ही ऐसी रीति प्रारम्भ करना चाहते हैं। जबकि थोड़े से विचार से भी इनका हल सरलता से निकल जाता है। लोग अस्थियों के अवशेष को हरिद्वार आदि स्थानों पर ले जाते हैं, वहां पर पण्डे पुजारियों द्वारा शोषण करवाते हैं, उस खर्च को त्याग देना क्या कठिन है? परन्तु अन्धविश्वास भी जड़े इतनी गहरी हैं कि उनसे पार पाना बड़ा दुष्कार है।

पृष्ठ 4 का शेष-समावर्त्तन संस्कार

(पुरूची:) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरद:) शारद ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह (च) और (राय:) धन की (पोषम्) पुष्टि को (उप सं व्यवस्व) अपने सब ओर धारण कर।

भावार्थ-विद्वान् लोग ब्रह्मचारी को बतावें कि तुमने आनन्द बढ़ाने के लिए इस वस्त्र को धारण किया है। अब तुम्हें गायों की हिंसा से रक्षा करनी चाहिए। तुम दीर्घायु प्राप्त करो और धनादि की वृद्धि करके कीर्ति युक्त जीवन व्यतीत करो।

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनू:।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरद: शतम्।।4।।

अर्थ-(हे ब्रह्मचारिन्) (एहि) तू आ। (अश्मानम्) इस शिला पर (अतिष्ठ) चढ़, (ते) तेरा (तनू:) शरीर (अश्मा) शिला जैसा दृढ़ (भवतु) होवे। (विश्वे) सब (देवा:) उत्तम गुण वाले (पुरूष और पदार्थ) (ते) तेरी (आयु:) आयु को (शतम्) सौ (शरद:) शरद् ऋतुओं तक (कृण्वन्तु) करें।

भावार्थ-ब्रह्मचारी को शिक्षा दी जावे कि यथा नियम पौष्टिक भोजन व्यायाम, ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने शरीर को दृढ़ बनावे और पूर्ण आयु भोगे।

यस्य ते वास: प्रथमवास्य 9 हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवा:।

तं त्वा भ्रातर: सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहव: सुजातम्।।5।।

अर्थ-(हे ब्रह्मचारिन्) (यस्य) जिस (ते) तेरे (प्रथमवास्यम्) प्रधानता से धारण योग्य (वास:) वस्त्र को (हराम:) हम लाते हैं, धारण कराते है (तम्) उस (त्वा) तेरी (विश्वे) सब (देवा:) उत्तमगुण (अबन्तु) रक्षा करें और (तम्) उस (सुवृधा) उत्तम सम्पत्ति से (वर्धमानम्) बढ़ते हए (सुजातम्) पूजनीय जन्म वाले (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (बहव:) बहुत से (भ्रातर:) भाई (जायन्ताम्) प्रकट होवें।

भावार्थ-जब ब्रह्मचारी का विद्वान् इस प्रकार सम्मान करे तब वह उत्तम गुणों की प्राप्ति से ऐसी उन्नति करें कि उसी के समान उसके अन्य बन्धुगण भी विद्या प्राप्त कर यशस्वी बनें।

वेदवाणी

कल्याणकारी दान

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽ नु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः।।

-ऋक्० ८।६२।११

ऋषिः-**प्रगाथः काण्वः।।** देवता-**इन्द्रः।।** छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः।।**

विनय-'इन्द्र के दान कल्याणकारी हैं, इन्द्र के दान बड़े कल्याणकारी हैं' इस टेक के साथ मैंने तेरी बहुत गुणगीतियाँ गाई हैं। हे इन्द्र! तेरे दानों की, तेरी दोनों की बहुत स्तुतियाँ गाई हैं, पर ये वाचिक स्तुतियाँ बहुत हो चुकीं। अब तो, हे वृत्रहन्! आओ, मैं और तुम मिल जाएँ और मिलकर क्रियामय वाणी द्वारा संसार को दान की महिमा दिखलाएँ। कोई भी मेल कोई भी संयोग, बिना दान-प्रतिदान के नहीं हो सकता। मेरा और तेरा यह संयोग तभी हो सकेगा जब मैं अपना सर्वस्व तुझे दे दूँ और प्रतिदान में तू मेरा अभीष्ट ऐश्वर्य मुझे दे दे, जब मैं अपने सब टेढ़ेपन को, अपने सब विकार को त्याग दूँ और प्रतिदान में हे वृत्रहन्! तू सब विघ्न-बाधाओं को छिन्न-भिन्न करके अपनी समता से, अपनी पवित्रता से मुझे भर दे। यह हमारा संयोग, यह योग, यह योग-प्रक्रिया तब तक चलेगी, जब तक तुझसे मुझे मेरे सब अभीष्ट ऐश्वर्य न मिल जाएँगे, जब तक मुझे पूर्ण प्राप्ति न हो जाएगी। तो आओ, मेरे इन्द्र! तुम भी आगे आओ, मैं आत्मबलिदान के रास्ते आज तुमसे संयुक्त होने निकला हूँ। मैं एक के बाद एक ऐसे-ऐसे आत्मबलिदान करूँगा कि इन्हें देख संसार दहल जाएगा। कट्टर-से-कट्टर अदानियों के हृदय हिल जाएँगे। दान के महात्म्य को देख यह संसार एक बार तो आत्मत्याग के लिए तत्पर हो जाएगा। जिन्हें आत्मत्याग में तनिक भी विश्वास नहीं, जिन्हें आत्मबलिदान में कुछ भी श्रद्धा नहीं, वे भी दान की शक्ति को अनुभव करेंगे, हमारी आत्माहुतियों की महिमा को समझेंगे, तथा हमारे इस दान-प्रतिदान का अनुमोदन करेंगे। तो लो, मैं अपने एक-एक अङ्ग को काट-काटकर तुम्हारे चरणों में रखता जाता हूँ और तुम, हे वज्रवाले! भेदन कर-करके मेरे लिए एक-एक उच्च ऐश्वर्य को देते जाओ। ओह! मेरे इन महान् आत्मबलिदानों के प्रतिदान में, हे शूर! जब तुम मुझे पूर्ण प्राप्ति करा दोगे, जब मुझे निहाल कर दोगे, तब तो यह दुनिया भी कह उठेगी-"निःसन्देह, इन्द्र के दान बड़े कल्याणकारी हैं, इन्द्र के प्रतिदान परम कल्याणकारी हैं।"

महात्मा चैतन्यमुनि जी के निधन पर दुख व्यक्त किया

आर्य समाज मन्दिर मॉडल टाऊन जालन्धर में 28-06-2020 रविवार को समाज के प्रधान श्री अरविन्द घई, मन्त्री श्री अजय महाजन एवं कोषाध्यक्ष श्री जोगेन्द्र भण्ड़ारी जी की उपस्थिति में आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा चैतन्यमुनि जी के अकस्मात् निधन पर दुःख व्यक्त किया। आर्य समाज के सभी सदस्यों ने महात्मा चैतन्यमुनि जी महाराज के निधन को आर्य समाज की अपूरणीय क्षति बताया।

आर्य समाज के प्रधान श्री अरविन्द घई जी ने कहा कि महात्मा चैतन्यमुनि जी बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने अपने जीवन में प्रत्येक कार्य को अच्छी तरह से किया। केन्द्रीय ऊर्जा मन्त्रालय में सरकारी सेवा में रहते हुए अपने हर कार्य का जिम्मेवारी से निर्वहन किया। महात्मा चैतन्यमुनि जी का व्यक्तित्व सहज, सरल व स्वाभाविक था। उनके चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता के भाव रहते थे। महात्मा चैतन्यमुनि जी जहां उच्चकोटि के साहित्यिक, कवि व लेखक थे वहीं पर वेद, उपनिषद, दर्शन, गीता आदि के मर्मज्ञ एवं उच्चकोटि के प्रवक्ता भी थे। उनकी वाणी में मधुरता का वास था।

उनके द्वारा कहा जाने वाला हर शब्द श्रोताओं के दिल में गहराई से उतर जाता था। हिन्दी के प्रचार में आपका सराहनीय योगदान रहा। आपने अपने जीवनकाल में बहुत सारी पत्रिकाओं का सम्पादन किया। आपकी उत्कृष्ट साहित्य सेवा तथा धार्मिक कार्यों के लिए आपको साहित्य अकादमी, सत्यार्थ रत्न, आर्य श्रेष्ठी तथा सारस्वत सम्मान के साथ अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आप अनेकों संस्थाओं के साथ आजीवन जुड़े रहे एवं उनकी सेवा करते रहे। आपने भारत के अनेक राज्यों के साथ-साथ नेपाल में जाकर भी वेद प्रचार किया। युवाओं में वैदिक संस्कृति के प्रति निष्ठा जागृत करने के लिए आप चरित्र निर्माण शिविरों, नैतिक शिक्षा शिविरों, संस्कारशाला शिविरों का आयोजन करते थे।

डी.ए.वी. मैनेजिंग कमेटी के साथ आपका गहरा सम्बन्ध था। डी.ए.वी. के हर कार्यों में आपको सम्मानपूर्वक आमन्त्रण दिया जाता था। आर्य समाज मॉडल टाऊन के साथ आपका अति स्नेह था। जालन्धर में आने पर प्रायः आर्य समाज के अतिथि घर में निवास करते थे।

अन्त में आर्य समाज के सभी सदस्यों ने दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत आत्मा को अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए और परमात्मा से प्रार्थना की कि वे पुण्यात्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें। उनके जाने से परिवार और समाज की जो अपूरणीय क्षति हुई है उसे पूरा करने की शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करे। दुःख की इस घड़ी में हम सभी पूज्या माता सत्याप्रिया जी एवं उनके पूरे परिवार के साथ हैं।

-अरविन्द घई
प्रधान आर्य समाज मॉडल टाऊन जालन्धर

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

इन्द्र वयं महाधने इन्द्रमर्मे हवामहे।
युजे वृत्रेषु वज्रिणम्।।

-पू० २.१.४.६

भावार्थ-हम सबको योग्य है कि छोटे-छोटे बाह्य और आभ्यन्तर सब युद्धों में, उस परम पिता जगदीश की अपनी सहायता के लिए सदा प्रार्थना करें। यह पापियों के पाप कर्म का फल कष्ट देने के लिए सदा सावधान है। इसलिए हम उस प्रभु की शरण में आकर ही सब विघ्नों को दूर कर सुखी हो सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं।

आपवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
अश्ववत्सोम वीरवत्।।

-पू० ३.१.३

भावार्थ-हे कृपासिन्धो भगवन्! आप अपनी अपार कृपा से गौ, घोड़े सुवर्ण, रजत आदि धन और पुत्र, पौत्र आदि से युक्त अनेक प्रकार का बहुत अन्न हमें प्राप्त करवें। हमारे गृहों में गौ, घोड़े, बकरी आदि उपकारक पशु हों तथा अन्न, वस्त्र आदि उपयोग में आने वाले अनेक पदार्थ हों, सुवर्ण, चाँदी, हीरे, मोती आदि धन बहुत हों, उस धन को हम सदा धार्मिक कामों में खर्च करते हुए लोक-परलोक में कल्याण के भागी बनें।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**